पूज्य लालचंदभाई का प्रवचन
शिकोहाबाद, ता. २४-४-१९८७
श्री समयसार, गाथा २९७, प्रवचन नंबर १ Version 1

ये समयसारजी परमागम शास्त्र है। उसका मोक्ष अधिकार चल रहा है। मोक्ष अधिकार में २९७ नंबर की गाथा आई है। २९७ नंबर की गाथा में शिष्य का प्रश्न है कि- '**इस आत्माको प्रज्ञाके द्वारा**' अर्थात् ज्ञान द्वारा '**कैसे ग्रहण करना चाहिए?**' कैसे ग्रहण करना अर्थात् कैसे जानना। कैसे जानना अर्थात् कैसे अनुभव करना। जानना अर्थात् अनुभव करना - प्रत्यक्ष। परोक्ष की बात नहीं है। अंतर्मुख श्रुतज्ञान द्वारा शुद्धात्मा का कैसे प्रत्यक्ष अनुभव कर सकते हैं? ऐसा एक शिष्य का सुन्दर प्रश्न है।

अनादिकाल से आत्मा ने अपने ज्ञान द्वारा, अपने शुद्धात्मा को, एक समय मात्र भी अनुभव में लिया नहीं है। यह उसकी बड़ी से बड़ी भूल है। सभी क्रियाएं की, परन्तु ज्ञान द्वारा आत्मा को जाना नहीं। उस शिष्य का प्रश्न है कि प्रभु! मैंने बहुत क्रियाएं की पर मुझे शांति हुई नहीं। मुझे आनंद आता नहीं। तो अब कैसे ज्ञान द्वारा आत्मा को जानना, अनुभव करना? कृपा करके मुझे वह विधि बताइए। ऐसा एक सुन्दर प्रश्न है। उसका उत्तर देते हैं।

पण्णाए धित्तव्वो जो चेदा सो अहं तु णिच्छयदो ।
अवसेसा जे भावा ते मज्झ परे ति णादव्वो ॥ २९७ ॥

(हरिगीत)

कर ग्रहण प्रज्ञा से नियत, चेतक है सो ही मैं ही हूँ ।
अवशेष जो सब भाव हैं, मेरे से पर हैं – जानना ॥२९७॥

कुन्दकुन्दाचार्य भगवान का अलौकिक शास्त्र है। भागवती शास्त्र है, दैवी शास्त्र है। उसका अर्थ समझाते हुए कहते हैं कि प्रज्ञा द्वारा अर्थात ज्ञान द्वारा। ज्ञान द्वारा मतलब शास्त्रज्ञान नहीं। शास्त्रज्ञान वह ज्ञान नहीं है। वह इन्द्रियज्ञान है, वह वास्तव में ज्ञेय है। वास्तव में अज्ञान है। ज्ञान नहीं। क्योंकि जिस ज्ञान में भगवान आत्मा जानने में नहीं आता उसका नाम अज्ञान है। अज्ञान की व्याख्या क्या है? कि जिस ज्ञान में अपना शुद्धात्मा जानने में नहीं आता और आत्मा के सिवाय दूसरी चीज़ जानने में आती हैं उसे परमात्मा अज्ञान कहते हैं।

तो कहते हैं कि '**प्रज्ञाके द्वारा...**' अर्थात् आत्मा के ज्ञान द्वारा आत्मा को आत्मा के ज्ञान द्वारा '**(आत्माको) इसप्रकार ग्रहण करना चाहिए कि-**' इसप्रकार जानना कि, इसप्रकार अनुभव में लेना कि, '**जो चेतनेवाला है वह निश्चयसे मैं हूँ।**' आहाहा! यह मैं कौन हूँ उसका उत्तर देते हैं और यह मैं, कैसे आत्मा स्वयं को प्रत्यक्ष हो- उसकी विधि बताते हैं। '**कि जो चेतनेवाला है,...**'ज्ञान द्वारा इसप्रकार ग्रहण करना कि जो चेतनेवाला है, चेतनेवाला अर्थात् जाननेवाला और देखनेवाला। उसके दो उप-भेद हैं। चेतना अर्थात् जानना और देखना। उसके दो भेद - प्रकार हैं। अभेद से चेतना और भेद करो तो देखना और

जानना, ऐसे दो भेद उसमें पड़ते हैं।

तो '**चेतनेवाला है वह निश्चय से मैं हूँ, शेष जो भाव हैं**...' ये रागादि पुण्य-पाप के परिणाम, व्यवहार रत्नत्रय के परिणाम, ये परपदार्थ, परभाव। '**शेष जो भाव हैं**...' जो भाव हैं अर्थात् इस आत्मा के अलावा दूसरे के दूसरे भाव हैं सही! बिलकुल नहीं हैं ऐसा नहीं है। पर जो मुझसे पर हैं शेष दूसरे भाव '**वे मुझसे पर हैं, ऐसा जानना चाहिए।**' ये चेतनेवाला वह स्व है और पुण्य-पाप के परिणाम वें मुझसे भिन्न होने से वें पर हैं किन्तु स्व नहीं हैं। एक आत्मा और दूसरा अनात्मा है।

'**टीका** :- **नियत स्वलक्षण का अवलंबन करनेवाली प्रज्ञा के द्वारा**,...' अर्थात् ज्ञान द्वारा। नियत अर्थात् तीनों काल ज्ञान का लक्षण, आत्मा का लक्षण, चेतना चेतना चेतना चेतना जिसका लक्षण है। उस '**स्वलक्षण**...' अपने लक्षण द्वारा, '**अवलंबन करनेवाली प्रज्ञा के द्वारा**,...' उस ज्ञान में ज्ञान का स्वलक्षण चेतना है। वास्तव में इन्द्रियज्ञान चेतना नहीं है। आहाहा! उसमें चैतन्यलक्षण वास्तव में व्याप्त नहीं होता। जैसे राग में व्याप्त नहीं होता वैसे इन्द्रियज्ञान- परावलम्बी ज्ञान में भी व्याप्त नहीं होता।

उस '**स्वलक्षण का अवलंबन करनेवाली प्रज्ञा के द्वारा**,...' वह अभेद का भेद है। ज्ञान है वह आत्मा का ही एक भेद है। और राग और इन्द्रियज्ञान वह अभेद आत्मा का भेद नहीं है। अभेद शुद्धात्मा सामान्य है, अतीन्द्रिय ज्ञानमय आत्मा, उसका एक भेद उसे प्रज्ञा कहने में आता है। और इन्द्रियज्ञान है वह अतीन्द्रिय ज्ञानमय आत्मा उस अभेद का भेद नहीं है इसलिए वह ज्ञान नहीं किन्तु परज्ञेय है। तो राग की बात तो क्या करनी? राग तो भिन्न ही है आत्मा से।

'**स्वलक्षण का अवलंबन करनेवाली प्रज्ञा के द्वारा**,...' अर्थात् ज्ञान द्वारा '**भिन्न भिन्न किया गया**,...' भिन्न किया गया मतलब? कि ज्ञायक ज्ञानमय आत्मा और जड़ ऐसा राग उन दोनों के संयोगसंबंध से, जैसे कि आत्मा और राग दोनों एक हो गए हों ऐसी जिसकी मिथ्याबुद्धि हुई थी। सुखमय आत्मा और दुःखमय जड़ ऐसे भाव ये दोनों जैसे कि एक हों ऐसी जिसे भ्रान्ति अनादिकाल की थी। स्वभाव और विभाव दोनों जैसे कि एक हों ऐसी भ्रान्ति अनादिकाल की उसे थी। अब कहते हैं कि श्रीगुरु मिले, भेदज्ञानका मन्त्र दिया कि ज्ञान को अंदर में झुकाकर ज्ञायक को देख तो राग से भिन्न अनुभव तुझे होगा। राग से आत्मा तीनों काल भिन्न है। राग को करना आत्मा के स्वभाव में नहीं है। क्योंकि राग जड़ है और आत्मा चेतन है। चेतन जड़ को किसी काल में भी कर नहीं सकता।

उस पुण्य और पाप को करनेवाला, पुण्य-पाप जो भाव हैं वें आस्रवभाव हैं। वें जड़भाव हैं। उन जड़भाव को करनेवाला, भावकर्म को करनेवाला, वो द्रव्यकर्म नाम का पुद्गलद्रव्य है। वो उनको करता है। आत्मा शुभाशुभभाव को करता नहीं है किन्तु शुभाशुभभाव को कोई दूसरा करता है। उसका लक्ष्य आत्मा के ऊपर, अकर्ता के ऊपर नहीं है यानि कि वह द्रव्यकर्म, भावकर्म को करता हुआ देखकर जैसे कि मैं उसे करता हूँ, (ऐसी भ्रान्ति उसको होती है।)

आज श्री समयसारजी की मोक्ष अधिकार की गाथा २९७ चल रही है। उसमें विषय बहुत गंभीर और अपूर्व था।

अनादिकाल से आत्मा स्वभाव से ज्ञायक-ज्ञाता होने पर भी, जाननहार जाननहार जाननहार जाननहार होने पर भी अनादिकाल से अपने आप से ही मैं कर्ता हूँ, ऐसा मानकर प्रवृत्ति करता है। कर्ता

हो तो सकता नहीं पर अभिमान करता है कि, मैं इसका करूँ, उसका करूँ, ऐसा करूँ, वैसा करूँ। परपदार्थ की कर्ताबुद्धि तो ठीक किन्तु अंदर में जो पुण्य-पाप के परिणाम की वृत्ति उत्पन्न होती है, कषाय की तीव्रता और मंदता उसका भी ज्ञानानंद परमात्मा कर्ता नहीं है। फिर भी उस परिणाम को मैं करता हूँ ऐसा मानता है। उसके कारण उसे अज्ञान खड़ा होता है। अज्ञान से जीव दुखी होता है। जब ज्ञानी का योग मिलता है तब समझाते हैं कि भाई! तुम तो ज्ञाता हो और कर्ता नहीं, तुम तो जाननहार हो, पर करनेवाले नहीं हो। तब महा मेहनत से बहुत बहुत बहुत प्रकार के पुरुषार्थ द्वारा वह अपनी कर्ताबुद्धि को दबाता है। मैं कर्ता नहीं पर ज्ञाता हूँ।

फिर मैं ज्ञाता हूँ इसमें आते ही जैसे कि परपदार्थ का मैं जाननेवाला हूँ, पुण्य-पाप होते हैं उनका मैं जाननेवाला हूँ, करनेवाला नहीं हूँ, ऐसे पर को और भेद को जानने की बुद्धि रह जाती है। फिर ज्ञानी ऐसा कहते हैं कि जो परिणाम तेरे नहीं, तेरे से होते नहीं, उनका करनेवाला तो पुद्गल द्रव्य है। तो जो परिणाम अपने नहीं, पराये हैं, वें सभी परद्रव्य एवं परभाव हैं। उनको जानने से तुझे किंचित् मात्र लाभ नहीं है। उनको जानने से तुझे ज्ञान भी नहीं होगा और सुख भी नहीं होगा। इसलिए तू अब उनको जानना बंद कर दे।

देह का जानना बंद कर, देव-गुरु-शास्त्र का जानना बंद कर, इस शास्त्र में ऐसे लिखा है और इस शास्त्र में ऐसे लिखा है। तेरा ये सब जानपना वास्तव में आत्मा के अनुभव के पहले अज्ञान में जाता है। क्योंकि इन्द्रियज्ञान से पर को जानते ही उसे मोह, राग, द्वेष हुए बिना रहते नहीं। इन्द्रियज्ञान हमेशा पर की प्रसिद्धि करता है और स्व आत्मा को तिरोभूत करता है। तब ज्ञानी के योग में आने पर फिर फिर से ज्ञानी बारम्बार कहते हैं कि तेरा आत्मा ही ज्ञाता, ज्ञान और ज्ञेय है। तेरे ज्ञान से भिन्न ज्ञेय हो सकता ही नहीं। और वह जो शास्त्र में आता है कि परपदार्थ ज्ञान का ज्ञेय है, वह सब व्यवहार के कथन हैं भाई!

निश्चय से तो स्वयं ज्ञान है और ज्ञान स्वयं ज्ञेय भी है और ज्ञान स्वयं ज्ञाता भी है। ऐसे एक आत्मा में तीन धर्म हैं। इसलिए तू भेद को और पर को जानना छोड़कर तेरे अभेद सामान्य आत्मा को एकबार देख। तो तुझे आत्मा का अनुभव होगा। भेद को करने की बुद्धि छोड़ दे और जानने की बुद्धि भी छोड़ दे। भेद अर्थात् परिणाम के भेद। जो कोई परिणाम होते हैं पराश्रित या स्वाश्रित उन परिणाम मात्र से आत्मा भिन्न है। इसलिए परिणाम का कर्ता नहीं है। मतलब कि नौ प्रकार के भेदों को करनेवाला पुद्गलकर्म है। इसलिए आत्मा उसका कर्ता नहीं है। इसप्रकार चारों तरफ से कर्ताबुद्धि छुड़ाकर और कहते हैं कि भेद को जानने से तुझे ज्ञान नहीं होगा। भेद को करना छोड़ा किन्तु जानना तूने छोड़ा नहीं। तो तू जहाँ का तहां ही है, कर्ता ही है।

भाषा में अकर्ता आया किन्तु भाव में अकर्ता हुआ नहीं। इसलिए भेद को अर्थात् परिणाम के भेदों को, परिणाम के प्रकारों को, जो भी परिणाम होते हों उन परिणामों का भी लक्ष्य छोड़ दे। भेद का लक्ष्य छोड़ दे। अभेद अनंतगुण का पिंड परमात्मा अंदर विराजमान है उसको अंतर में जाकर तू देख। तो तुझे ज्ञान भी होगा और तुझे सुख भी होगा। ज्ञान अर्थात् अतीन्द्रिय ज्ञान और सुख अर्थात् आत्मिक सुख। तुझे आनंद का अनुभव आएगा। इसलिए मैं परिणाम को करता नहीं क्योंकि मैं अकर्ता हूँ। मैं परिणाम को जानता नहीं क्योंकि मैं ज्ञायक को जानता हूँ। ऐसे बारम्बार अकर्ता के लक्ष से ज्ञायक के ऊपर आ जा। तो

तुझे आत्मा का अनुभव होगा। कर्ताबुद्धि छूट जाएगी। गृहस्थ अवस्था में आत्मदर्शन होगा। और अल्पकाल में तेरी मोक्ष अवस्था प्रगट होगी। एक पर की कर्ताबुद्धि और पर को मैं जानता हूँ- ये दो प्रकार के व्यवहार के पक्ष अनादिकाल के हैं।

सम्पूर्ण समयसार में सार ये है कि प्रज्ञा द्वारा चेतनेवाले को चेतता हूँ, प्रज्ञा द्वारा जाननहार को जानता हूँ। ज्ञान द्वारा जाननहार को जानता हूँ। जो ज्ञान जिसका है उसे न जाने और जो ज्ञान जिसका नहीं है उसे जानने जाए, तो उसमें ज्ञान नहीं होता किन्तु अज्ञान खड़ा होता है। इसलिए अब थककर भी तू एक बार छः महीने प्रयोग कर तो तुझे आत्मा की प्राप्ति होती है या नहीं होती वो तू देख। अवश्य तुझे होगी। ये दो प्रकार के दोष अनादिकाल के हैं। भेद का करना और भेद का जानना। भेद मतलब परिणाम। परिणाम मात्र का नाम हो तो भेद (है)। भेद को परिणाम कहने में आता है। उस भेद का करना भी नहीं है और भेद, परिणाम का भेद है उसका जानना भी बंद कर दे। एकबार तो बंद कर दे। तुझे आत्मदर्शन होने के पश्चात् वें भेद जब जानने में आयेंगे तब उन्हें व्यवहार कहने में आएगा।

वह भी पुनः पुनः, वापस तुझे भेद को जानना छोड़कर और अभेद को जानने के लिए फिर से भेद को जानना छोड़ना पड़ेगा। सम्यग्दर्शन के लिए तो भेद का जानना छूटा, सम्यग्दर्शन हुआ, सविकल्पदशा आई, फिर फिर से उपयोग को अंदर में जोड़ने के लिए, चारित्र के लिए भी तुझे परिणाम के भेद को देखना बंद करना पड़ेगा। पर्याय को देखना बंद करेगा तो अंतर में स्वाभाव को देखनेवाली चक्षु प्रगट होती है। उसको शास्त्र की भाषा में द्रव्यार्थिक चक्षु कहने में आता है। उसके द्वारा आत्मा का दर्शन होगा। आत्मा के दर्शन बिना कोई भी क्रियाकाण्ड चाहे जितना करे, व्रत करे, तप करे, जप करे, मंदिर बनवाए, अस्पताल बनवाए, अनेक प्रकार के ये शुभभाव कर्ताबुद्धि से करता है किन्तु उसमें भव का अंत आता नहीं।

भव का अंत तो अपने शुद्धात्मा को अंतर में जाकर जानना, अनुभव करना और अनुभव करके प्रतीति में लेना कि जाननहार वह ही मैं हूँ। तो बारम्बार इस प्रकार से प्रैक्टिस करने पर उसे जरूर आत्मदर्शन हो सकता है। शर्त ये है कि एक कर्ताबुद्धि छोड़नी और पर को जानने का अभिप्राय भी छोड़ देना। पर को मैं जानता ही नहीं। पर को जानता नहीं- इसमें सब आ गया। भेद को जानता नहीं, पर को जानता नहीं, लोकालोक को जानता नहीं। पर को जानते ही इन्द्रियज्ञान की उत्पत्ति होती है। पर को जानना बंद किया तो नया ज्ञान प्रगट होता है। उसको जात्यांतर ज्ञान कहने में आता है। अपूर्व जाति का ज्ञान है कि जिसमें आत्मा का दर्शन होता है। इस प्रकार से २९७ गाथा में कहने का आशय ये है। अब किसी को कोई प्रश्न हो तो प्रश्न करे तो चर्चा चले। आज तो अभी चर्चा है, अभी स्वाध्याय नहीं है।

मुमुक्षु :- जीव में परिणाम के भेद लेना या गुण-गुणी के भेद लेना?

उत्तर :- नहीं। परिणाम के भेद लेना है। क्योंकि गुण-गुणी तो अभेद ही हैं। उसका भेद करके फिर अभेद में जाना उसके बजाय पर्याय का भेद तो प्रगट होता है और वो तो वस्तु अभेद ही है। एक सामान्य और एक विशेष। सामान्य में भेद करे तो ज्ञान, दर्शन, चारित्र के भेद पड़ते हैं किन्तु वह तो अभेद ही है। अभेद में भेद किसलिए करना? और पर्याय का भेद तो है है और है इसलिए उसका लक्ष्य छोड़ना। उसका भेद करके लक्ष्य छोड़ना उसकी अपेक्षा वह तो सामान्य तो अभेद ही है। और पर्याय का भेद तो

प्रगट होता है। इसलिए पर्याय के भेद को जानना बंद कर देना। ऐसा (प्रवचनसार) ११४ गाथा में गुणभेद को जानना बंद कर ऐसा नहीं कहा किन्तु पर्यायार्थिक चक्षु को बंद कर। पर्याय को जानना बंद कर दे तो तुझे द्रव्य स्वभाव जानने में आएगा।

बाकी समझाने के लिए दृष्टि का विषय ज्ञान, दर्शन, चारित्र के भेद से समझाते हैं। लेकिन एक सामान्य और एक विशेष। जितना बने उतना छोटा करना चाहिए। जितना बने उतना। सामान्य में अनंत गुण आ जाते हैं।

मुमुक्षु :- परमार्थ प्रतिक्रमण में नियमसार में और ३२० गाथा में, इन दोनों में क्या कहना चाहते हैं?

उत्तर :- इन दोनों में वाच्य तो समान है वाच्य। किन्तु प्रतिपादन की पद्धति के प्रकार में फेरफार होता है। सम्यग्ज्ञान तो रहता है। साधक अभेद को जानने के बाद भेद को जानता है। जाना हुआ प्रयोजनवान कहा न? किन्तु वह सविकल्पदशा आ जाती है। साधक को सविकल्पदशा स्वीकार्य नहीं है। इसलिए मैं भेद को जानता नहीं। मैं तो अभेद को जानता हूँ। फिर से भेद को जानने का निषेध करके अभेद में चला जाता है। अभेद को जानने के पश्चात् भेद को जाने तो अज्ञान नहीं है। पर सम्यग्ज्ञान है लेकिन उसमें सविकल्पदशा आती है। और जो भेद को सविकल्प दशा में जानता है न, उसे भी इन्द्रियज्ञान उत्पन्न होता है। इन्द्रियज्ञान की अपेक्षा से समझाने में आये तो इन्द्रियज्ञान वह ज्ञेय है। एक अपेक्षा से अ..ज्ञान भी है ऐसा कह सकते हैं। क्योंकि, भेद को जानने पर शुद्धोपयोग प्रगट होता नहीं। इसलिए पतित हुआ ऐसा भी कहलाता है। बहुत प्रकार हैं।

मुमुक्षु :- साधक होने के पश्चात् भी पर को जाने तब इन्द्रियज्ञान खड़ा होता है?

उत्तर :- हाँ, खड़ा होता है - खड़ा होता है।

मुमुक्षु :- अभेद का लक्ष्य होने पर भी...

उत्तर :- होने पर भी। परसत्तावलंबनशील ज्ञान वह बंध का कारण है। मोक्ष का कारण नहीं। साधक की बात है। परसत्तावलंबनशील ज्ञान अर्थात् इन्द्रियज्ञान साधक को भी बाधक होता है। साधक को साधन होता नहीं। बाधक होता है। ..मूल में वार करना चाहिए। भेद को जानने का साधन इन्द्रियज्ञान नहीं है। इन्द्रियज्ञान स्वयं को जानता नहीं और पर को भी जानता नहीं। यह १७२ (गाथा प्रवचनसार) में है। दो बोल में, अलिंगग्रहण के बोल में। आहाहा!

अरे! इन्द्रियज्ञान ज्ञान ही नहीं है। वहाँ से बात उठाई है! फिर उसके द्वारा भेद को जानता है या नहीं जानता, ये बात भी रहेगी नहीं।

मुमुक्षु :- .....इन्द्रियज्ञान पर को जानता है या नहीं जानता, ये बात तो बाद की है। पर वो ज्ञान है या नहीं?

उत्तर :- वो ज्ञान ही नहीं है। इन्द्रियज्ञान का नाम तो ज्ञेय है। मोह राजा ने उसका नाम ज्ञान रखा है। और अरिहंत भगवान कहते हैं कि उसका नाम ज्ञान ही नहीं, ज्ञेय है। वह ज्ञेय किसके जैसा? कि सभी इन्द्रियाँ उसमें डाल दी। भावेन्द्रिय, भावेन्द्रिय के विषय और द्रव्येन्द्रिय ये सब परज्ञेय में जाता है। ज्ञान ही नहीं है। ऐसा। ज्ञेय के बदले ज्ञान मानता है वह भूल है। उसको ज्ञान मानता है तब तक उसे आत्मज्ञान

प्रगट होता नहीं। और उसके द्वारा मैं जानता हूँ इस इन्द्रिय द्वारा, ऐसी बुद्धि रह जाती है। तू जान और इन्द्रियज्ञान द्वारा आत्मा जानने में नहीं आता, ऐसा तू जान। ये दो बोल तो अपूर्व हैं।

इन्द्रियज्ञान द्वारा इन चंद्रप्रभु को आत्मा जानता नहीं। चंद्रप्रभु परमात्मा की प्रतिमा है न, उसको इन्द्रियज्ञान द्वारा जाने ऐसा आत्मा का स्वभाव नहीं है। अतीन्द्रियज्ञान द्वारा आत्मा को जानने पर वह भगवान, भगवान में जानने में आ जाता है।

मुमुक्षु :- लोकालोक को जानता है? ज्ञान को जानता है?

उत्तर :- ज्ञान को निश्चय से जानता है, तो लोकालोक (उसमें) ज्ञान में जानने में आ जाता है, निमित्तपने। तो लोकालोक को जानता है ऐसा व्यवहार से कहा भी जाता है। निश्चय से तो ज्ञान ही जानने में आता है। स्वसंबंधी का और परसंबंधी का ज्ञान ही जानने में आता है। ज्ञान की पर्याय ही जानने में आती है। किन्तु लोकालोक उसमें निमित्त है इसलिए नैमित्तिक ज्ञान की पर्याय जानने में आती है। उसमें जो निमित्त होता है उसे उपचार से निमित्त को जानता है ऐसा कहने में (आता है)। निश्चय से तो वह ज्ञेयाकार ज्ञान वह ज्ञान की पर्याय है। उस ज्ञेयाकार ज्ञान को ही ज्ञान जानता है। पर उस ज्ञेयाकार ज्ञान में लोकालोक ज्ञेय निमित्त है तो कार्य में कारण का उपचार देकर, जानने में आता है ज्ञान और उपचार से कहने में आता है कि लोकालोक जानने में आता है। उसमें कोई दोष नहीं है।

जानने में आता है नैमित्तिक और कहने में आता है कि निमित्त को भी जानता है। (केवल निज स्वभाव का, अखण्ड वर्ते ज्ञान,) 'कहिए केवलज्ञान (उसे), देह सहित निर्वाण'। अकेला निश्चय.... ऐसा ज्ञेयाकार अभेद.... प्रवचनसार। नैमित्तिकभूत ज्ञेयाकारों को, यहाँ ज्ञान की पर्याय और उसमें निमित्तभूत ज्ञेयाकारों - ज्ञेय के आकार, वह लोकालोक। लोकालोक ज्ञान की स्वच्छता में जानने में आता है तो ज्ञान की पर्याय का नाम नैमित्तिकभूत ज्ञेयाकार और उसमें लोकालोक निमित्त है तो वह निमित्तभूत ज्ञेयाकार।

एक का नाम निमित्तभूत ज्ञेयाकारो और यहाँ ज्ञान की पर्याय का नाम नैमित्तिकभूत ज्ञेयाकारो, यहाँ स्वच्छता है तो उसमें झलकता है जैसे दर्पण में, शीशे में सब झलकता है, ऐसे। उसमें कोई दोष नहीं है। उससे कोई ज्ञान मलिन होता नहीं। लोकालोक जानने में आता है तो ज्ञान मलिन होता नहीं। उल्टा ज्ञान की स्वच्छता है। लोकालोक ज्ञान को प्रसिद्ध करता है। ज्ञान लोकालोक को नहीं। ऐसी वस्तु है।

पहले अज्ञानी था क्योंकि ऐसा मानता था कि मैं राग का करनेवाला हूँ, तब भी करनेवाला तो पुद्गलकर्म था। जब ऐसा मानता था कि राग का करनेवाला मैं हूँ, तब वास्तव में करनेवाला तो पुद्गलकर्म था। किन्तु पुद्गलकर्म कर्ता होने पर भी, अपनी उपस्थिति देखकर मैं करनेवाला हूँ - ऐसी उसे भ्रान्ति हुई थी।

अब ज्ञानी मिलने के पश्चात् तू ज्ञान का करनेवाला है और राग का करनेवाला नहीं है। तब उसने कर्ताबुद्धि छोड़ी, कर्ताबुद्धि छोड़ने के बाद भी राग तो होता है। तो कहते हैं कि रागी तो पुद्गल है। राग को पुद्गल करता है। पहले मैं राग को करता नहीं था किन्तु मानता था। अब ख्याल आया कि मैं राग का करनेवाला नहीं, पुद्गल करता है। तो उसकी मान्यता मिथ्यात्व की छूट गई। बस। दूसरा कुछ नहीं। फर्क इतना पड़ा। पुद्गल तो अपना कार्य करता ही रहता है।

जैसे कुम्भार है न कुम्भार। वो घड़े को करता नहीं था, करनेवाली तो मिट्टी थी। किन्तु कुम्भार की

मौजूदगी थी मिट्टी के कार्यकाल में, मिट्टी का जब घड़े (रूप होने) का कार्यकाल था तब मिट्टी करनेवाली (थी), स्वयं उसका जाननेवाला था, उसके बदले माना कि घड़े को मैंने किया। फिर ज्ञानी मिले और कहा कि घड़े का करनेवाला तू नहीं है, तू तो जाननेवाला है। घड़ा होता है उसका जाननेवाला है तो कर्तापने की मान्यता छूट गई। घड़ा पहले बनाता था और कर्ताबुद्धि निकल गई इसलिए घड़ा बनना बंद हो गया ऐसा नहीं है। घड़ा बनना तो चालू ही रहता है। ज्ञानी होने के पश्चात् भी घड़े का कार्य तो होता ही रहता है। ये जानता ही रहता है। पहले अभिमान था। अभिमान छूट गया। जानता रहता है। कुम्भार भी ज्ञानी हो सकता है। और अपना व्यवसाय तो रहता है। व्यवसाय रहता है पर व्यवसाय के पहले क्या था? कि घड़े को मैं करता हूँ (ऐसा मानता था)। अब घड़े को मैं करता नहीं, मिट्टी घड़े को करती है। ऐसी बुद्धि हो गई।

ऐसे ही पर्याय में पर के लक्ष्य से राग होता है उसका करनेवाला तो कर्म था। किन्तु मानता था कि मैं राग को करता हूँ। राग की कर्ताबुद्धि छूट गई। और जड़कर्म तो राग की रचना करता रहता है थोड़े टाइम तक। किन्तु मैं करनेवाला हूँ, ऐसी बुद्धि छूट गई। इसलिए वास्तव में राग का कर्ता था और (अब) कर्ता बंद हो गया, ऐसा नहीं है। कर्ता दूसरा था और मानता था कि मैं कर्ता हूँ, ये मान्यता छूट गई। कर्म कार्य करता रहता है।

पहले कपड़े की दुकान में, बीस गज का थान था भोगीभाई के पास ग्राहक आया कि इसमें से दस गज काट कर दीजिये। तो दस गज पर केंची रखकर काटकर दिया। तब इस केंची द्वारा मैंने काटा, ऐसा भासित होता था। काटा नहीं जा सकता था। झूठा प्रतिभास था। पर जब ज्ञानी मिले (और कहा) कि तुम्हारे हाथ को केंची छूती नहीं। केंची को कपड़ा छूता नहीं। वो तो दोनों स्वयं कटते हैं। मैं तो जाननहार हूँ, करनेवाला नहीं। अब हो गया ज्ञानी। जयसुखभाई! ज्ञानी मिलने के पश्चात् । गए दुकान पर। दूसरे दिन ग्राहक आया कि बीस गज के थान में से दस गज काट कर दीजिये सेठ! केंची लेकर काटा। पहले दिन जो क्रिया थी, वही की वही क्रिया चालू रही और कर्ताबुद्धि छूट गई। आहाहा! यह स्थिति है। समझ में आया? दस किलो दाल दीजिये। दाल तो दी लेकिन मैंने दी वजन करके (ऐसा मानता है), तबतक तो अज्ञान है। दूसरे दिन संध्या बहन (ने कहा), पापाजी! आप कर्ता नहीं हो, आप तो जाननहार हो! अच्छा! मैं जाननहार हूँ? कर्ता नहीं? कि कर्ता नहीं हो पापाजी आप। अच्छा! मैं ज्ञाता हूँ!

दूसरे दिन दुकान पर गए। दस किलो दाल दो। दाल देते हैं, पर कर्ताबुद्धि छूट गई। वो जो क्रिया करनेवाला दूसरा है, उसको आप अटका नहीं सकते। पुद्गल अपनी क्रिया करता है, उसको अटकाने की ताकत आत्मा में नहीं है। अज्ञान अवस्था में कर्म और नोकर्म के परिणाम करता था। तब तक अज्ञानी था।

अब कहते हैं कि कर्म और नोकर्म के परिणाम को जो न करे, मात्र जाने वो ज्ञानी है। मतलब कर्म और नोकर्म के परिणाम तो होते ही रहते हैं। अज्ञान अवस्था में भी होते थे और साधक हुआ तो भी कर्म और नोकर्म के परिणाम होते हैं। तब वह बोलता है कि व्याप्य-व्यापक संबंध उसके (पुद्गल के) साथ है। मेरे साथ व्याप्य-व्यापक (संबंध नहीं है।) कल भी व्याप्य-व्यापक संबंध उसके साथ ही था मगर मानता था कि मेरे साथ राग का व्याप्य-व्यापक संबंध था। वह व्याप्य-व्यापक संबंध की, कर्ता-कर्म संबंध की बुद्धि भ्रष्ट थी, वह निकल गई झूठी बुद्धि। और पुद्गल तो राग को करता रहता है।

आत्मा ज्ञाता होता है इसलिए पुद्गल की क्रिया अटकी है, अटकाता है, ऐसी ताकत आत्मा में नहीं है। तो तो वह ज्ञाता हुआ ही नहीं। पुद्गल की क्रिया, राग की क्रिया अटकावे, वह ज्ञानी नहीं है। राग की क्रिया अटकाई नहीं जा सकती। राग का मैं कर्ता हूँ - ऐसी मिथ्याबुद्धि निकल जाती है और राग की क्रिया होती रहती है थोड़े टाइम। थोड़े टाइम। मार्मिक बात है। हमारे बीचमें तो यह बात गहराई से होती है।

श्रोता :- उसमें स्वच्छंद नहीं आ जाएगा?

उत्तर :- नहीं, स्वच्छंद नहीं आता। सम्यग्दर्शन हो जाता है। सम्यग्दर्शन हो जाता है, साधक हो जाता है, बाधक रह जाता है, बाधक का ज्ञान रह जाता है, पुद्गल राग को करता है- ऐसा जानना भी रह जाता है। और मैं उसको करता नहीं, ऐसा भी हो जाता है। और ज्ञान के साथ आत्मा का व्याप्य-व्यापक संबंध हो जाता है। राग के साथ व्यवहार से ज्ञाता-ज्ञेय का संबंध हो जाता है। ये सब रह जाए, हो जाए। रह जाए- हो जाए - जाननहार रह जाए। बस।

ये हाथ है न, सहज ही ऊँचा-नीचा होता रहता है या पुद्गल करता रहता है। अच्छा। ये हाथ है न। ये ऊँचा-नीचा हो रहा है या तो पुद्गल उसको कर रहा है। समझे? दो बात की। अच्छा। पहले (ऐसा कहता था कि) मैंने हाथ ऊँचा किया और मैंने नीचे किया। तो ज्ञानी मिले (और कहा कि) अरे भैया! हाथ ऊँचा-नीचा करना वो क्रिया पुद्गल की है, तेरी क्रिया नहीं है। अच्छा? तो मेरी क्रिया क्या? कि जानना देखना । तो कर्ताबुद्धि छोड़ दे। अच्छा, मैं कर्ताबुद्धि छोड़ देता हूँ। अब ये हाथ ऊँचा नहीं करूँगा और नीचा भी नहीं करूँगा। अरे! कर्ताबुद्धि रह गई! अरे? मैंने कहा कि मैं नहीं करूँगा हाथ ऊँचा-नीचा!! (मुमुक्षु :- तो भी कर्ताबुद्धि आ गई।) (शिष्य तर्क करता है-)ये हाथ ऊँचा-नीचा पहले करते थे, अब ऊँचा भी नहीं करूँ और नीचा भी नहीं करूँ, तो कर्ताबुद्धि छूट गई। (गुरु कहते हैं) कि नहीं छूटी।

(शिष्य:-) तो अब क्या करना? (उत्तर:-) कि पहले पुद्गल उसका कर्ता था। और तू ज्ञाता हुआ तो भी पुद्गल तो उसका कार्य करता रहता है। तेरे को क्या नुक्सान है? आहाहा! 'मैं कर्ता था' - ये मिथ्याबुद्धि छूट गई। पुद्गल का कार्य तो होता रहेगा। आहाहा!

पहले सेल्फ ड्राइविंग करते थे, (तो मानते थे कि) मोटर मैं चलाता हूँ। समझे? मोटर मैं चलाता हूँ। ज्ञानी मिले(और कहा), अरे! मोटर स्वयं चलती है। तेरा हाथ स्टीयरिंग को अड़ता नहीं है। आहाहा! पेट्रोल से मोटर चलती नहीं है। स्वयं संचालित है? हाँ। पुद्गल कर्ता है। उसका कर्ता है कोई। तू नहीं, पुद्गल कर्ता है। जागृत हो गया। (शिष्य:-)अच्छा! अब मैं मोटर नहीं चलाऊंगा। मोटर चलाऊं, तो कर्ताबुद्धि का दोष आएगा। (गुरु:-) अरे! मोटर चलाने से कर्ताबुद्धि का दोष नहीं आता है। 'मोटर मैं चलाता हूँ' - ऐसी मिथ्याबुद्धि से कर्ताबुद्धि का दोष आता है। (मोटर) चलती तो रहती है। तो डाल दे पुद्गल के ऊपर कि पुद्गल कर्ता है और मैं जानता हूँ। मैं जानता हूँ, पुद्गल कर्ता है। मैं जानता हूँ, पुद्गल कर्ता है। आहाहा! (कर्ताबुद्धि में से) निवृत्ति मिल जाती है। सम्यग्दर्शन हो जाता है।

पुद्गल की क्रिया रोकने की ताकत आत्मा की नहीं है। मगर उपयोग पलटाकर आत्मा की तरफ हो जाने की शक्ति आत्मा में है। करना, नहीं करना, रोकना, वो चीज है नहीं अपने आधीन। मान्यता बदल दे, बस। श्रद्धा बदलती है, सम्यग्दर्शन हो जाता है। अल्पकाल में स्थिरता होकर मोक्ष हो जाता है। तो क्या वो ज्ञाता हुआ तो हाथ की क्रिया बंद करता है? हाथ की क्रिया पहले कहाँ करते थे? मानते थे, वह मान्यता

छूट गई। हाथ को हिलाता रहता है पुद्गल।

भाषा...भाषा का कर्ता मैं नहीं हूँ। कल से मैं मौन हो जाऊंगा। भाषा निकले तो कर्ताबुद्धि आवे न? भाषा हमको बोलना ही नहीं है कल से। (गुरु:-) अरे! मूर्ख है! तू जानता ही नहीं कि कर्ता- अकर्ता का स्वरुप क्या है! भाषा तो कल भी पुद्गल करता था और आज भी भाषा का कर्ता तो पुद्गल ही है। तू मानता था कि भाषा मैंने की, (वो) मान्यता छोड़ दे। तो पुद्गल के कार्य को देख ले। बस। पुद्गल कर्ता है, मैं तो जानता हूँ (शिष्य का प्रश्न:-) तो स्वच्छंद नहीं आएगा? (उत्तर:-) नहीं, स्वच्छंद नहीं, सम्यग्दर्शन होगा। और मैं करनेवाला हूँ, उसका नाम स्वच्छंद है।

मिथ्यात्व का स्वच्छंद। भगवान ने कर्ताबुद्धि के मिथ्यात्व को स्वच्छंद कहा है। बहन को कहा ज्ञानी ने कि रोटी तू नहीं करती। अच्छा! रोटी मैं नहीं करूँ? कर्ता नहीं है तू रोटी की। (तो अब मैं रोटी नहीं करुँगी) नहीं करूँ करूँ नहीं बोल। सुन! तू बात पहले सुन। रोटी का कर्ता आत्मा नहीं है। रोटी का कर्ता दूसरा पदार्थ है। कौनसा पदार्थ है? पुद्गल। तो मैं क्या? जाननेवाला। रोटी का कर्ता मानने से/ करने से मिथ्यात्व का दोष आता है। दूसरे दिन रोटी करना बंद कर दिया। रसोई बंद। स्वामीजी आये, क्रोधी स्वामीजी एकदम, ऐसा कोई क्रोधी (रोटी लेने आया), 'रोटी नहीं बनाई?' कि मैं कर्ता नहीं हूँ। 'अरे! क्या समझे तुम? कुछ समझते ही नहीं। रोटी तू करती थी कल? कि आज बंद किया?' आहाहा! 'ये क्या स्वामीजी आप बोले?' कि रोटी कल तू नहीं करती थी। कर्तापने की मान्यता थी। कल रोटी करनेवाला तो पुद्गल था। और आज रोटी करेगा तो पुद्गल करेगा। तू कहाँ करनेवाली है? तू तो जाननेवाली है। आहाहा! धर्मपत्नी को सम्यग्दर्शन हो गया। बोलो! ऐसा ही स्वरुप है।

पहले कर्ता था नहीं। कर्ताबुद्धि थी, मिथ्याबुद्धि थी। करनेवाला कोई और था और मानता था कि मैं कर्ता हूँ। दुकान की कार्यवाही मैं करता हूँ ऐसा मानता था। मोटर चलती थी पुद्गल से और मैं चलाता हूँ - ऐसा अभिमान था। अभिमान निकल गया। जीतुभाई! मोटर तो पुद्गल चलाता है। रोबोट! रोबोट चलाता है। मैं तो जाननेवाला हूँ। आहाहा! रोबोट अपना काम करता है, करने दो! हमें क्या है? रोबोट मतलब जड़। उसमें चेतन नहीं है। उसका नाम रोबोट। अभी रोबोट निकले हैं न अमेरिका में, रशिया में। कोई चाय लाता है, कॉफ़ी लाता है, कोई दरवाज़ा खोलता है, ऐसे सलाम करते हैं। सब करता है वह रोबोट मतलब कि उसमें चेतन नहीं है। जड़ का काम।

श्रोता :- खूबी तो ये है कि कॉफ़ी मंगवाओ तो कॉफ़ी ही लाता है, चाय नहीं लाता।

उत्तर :- और दो कप कहो, तो दो ही लाता हैं। और फिर चीनी बगैर की कहो तो चीनी बिना ही आवे। चीनी बिलकुल नहीं तो चीनी बगैर की ही कॉफ़ी दे। कौन करता है? उसमें चेतन तो है नहीं। (श्रोता :-पुद्गल। इस बात को पुष्टि मिलती है।) उत्तर :- इस बात को पुष्टि मिलती है। पुद्गल ही करता है। आत्मा करता नहीं। उसमें आत्मा नहीं है, उसमें जीव नहीं है। फिर भी अपने कार्य तो करता है। सब करता है। (श्रोता :- इस बात को पुष्टि मिली।) उत्तर :- हाँ, पुष्टि मिलती है, हाँ कि आत्मा अकर्ता है। पुष्टि मिली अपनी बात को, सर्वज्ञ भगवान की बात को कि आत्मा अकर्ता है, जाननहार है, करनेवाला नहीं।

ये (शरीर) रोबोट है। रोबोट है। दूसरा क्या? ये कौन बोलता है? रोबोट! रोटी, दाल, सब्जी, चावल कौन खाता है? रोबोट! जानता है कौन? जीव। जानता है जीव। जानता है जीव, करता है रोबोट।

करनेवाला पुद्गल है, जाननहार आत्मा है। आहाहा! मैं तो जाननहार हूँ, करनेवाला नहीं। बस। इसमें लिखा है बोर्ड में। आत्मा केवल जाननहार है और कर्ता नहीं है। यदि कर्ता हो, तो सबको सम्यग्दर्शन प्रगट कर देता। और सम्यग्दर्शन प्रगट होने के पश्चात् केवलज्ञान कर देता! लेकिन करने की ताकत नहीं है। आहाहा!

है उसको जान और होता है उसको जान। है उसको जान पहले और सम्यग्दर्शन होता है, उसको जान। मगर जानना, जानना और जानना। आत्मा में 'करना' कहीं है ही नहीं। कर्ताबुद्धि जीव को भटकाती है। कर तो सकता नहीं। कर्ताबुद्धि होती है। कर तो सकता नहीं। कुम्भार घड़े को कर सकता नहीं। कर्ताबुद्धि होती है, मिथ्याबुद्धि। मिथ्याबुद्धि से भटकता है। यदि आत्मा वास्तव में राग को करता हो और राग को करे, तो सम्यग्दर्शन होना चाहिए। करता है कोई और मानता है कि मैं करता हूँ, उसका नाम मिथ्याज्ञान है।

मुमुक्षु :- कौन करता है?

उत्तर :- पुद्गल करता है। रोबोट! कषाय के भाव को कर्म करता है। कर्म के लक्ष्य से, संबंध से होनेवाले भाव, वें सब कर्मकृत हैं। पुरुषार्थसिद्धिउपाय में आया है कि कर्मकृत रागादि से आत्मा असंयुक्त होने पर भी संयुक्त जैसा लगता है, उसका नाम संसार है। कर्मकृत है राग। बोलो! चरणानुयोग के शास्त्र में आया। चरणानुयोग का शास्त्र है पुरुशार्थसिद्धिउपाय। उसमें लिखा है कि राग कर्मकृत है।

भगवान की पूजा का राग...आपने पूजा की या रोबोट ने की? तो कोई पूजा नहीं करेगा! अरे! पूजा का भाव रोबोट करे बिना रहेगा नहीं और आत्मा जाने बिना रहेगा नहीं। जानने का स्वकाल है उस ज्ञेय का। वह ज्ञेय आकर खड़ा होगा। और ज्ञान उसको जानता हुआ परिणम जाएगा। रोबोट करेगा और ज्ञान जानते जानते मोक्ष हो जाएगा। आहाहा! (श्रोता :- करने, नहीं करने का प्रश्न ही नहीं है।) उत्तर :- प्रश्न ही नहीं है। जानना आत्मा का स्वभाव है। (श्रोता :- मार्ग मिल जाए ऐसी बात है।)

गमनभाई के घर हम गए थे। बहन बेठी हैं। उन्होंने कहा कि इतने वर्षों से हम सब जगह जाते थे पर कोई मार्ग सूझता नहीं था। मार्ग सूझता नहीं था। क्या है यह? हम तो स्त्री जाति, ज्यादा शास्त्र का ज्ञान नहीं। हृदय से कहती थी। आहाहा! मैं तो जाननहार हूँ, करनेवाला नहीं। बस! इतने में तो मुझे शांति हो गई! शांति हो गई! बोलो! उनके स्वयं के शब्द हैं। प्रशंसा के लिए नहीं। पर दूसरों को अनुकरण करने जैसा है (इसलिए बताते हैं)। मैं जाननहार हूँ मगर करनेवाला नहीं। तो जीतुभाई कहेंगे कि कल से तो सब बंद हो जाएगा। कि नहीं। पुद्गल कार्य किये बिना रहेगा नहीं और मैं जाने बिना नहीं रहूँगा। मैं जानूँगा और वह काम करेगा। आहाहा! आत्मा जाननहार है। 'प्रभु मैं ज्ञायकरूप केवल जाननहारा रे' बहन का भजन है। आहाहा!

मुमुक्षु :- भाई! रिकॉर्ड करें तो सबको काम आये न?

उत्तर :- कहाँ से हो? होनेवाला हो वह होता है। होनेवाला हो ऐसा होता है। आत्मा के अधिकार की बात नहीं है। आहाहा! उसमें व्याप्य-व्यापक संबंध पुद्गल का है। पुद्गल कर्ता होकर अपने कार्य को करता है। आहाहा! स्पर्श, रस, गंध, वर्ण को करे, राग-द्वेष-मोह को करे। यह सब करनेवाला आदि, मध्य, अंत में पुद्गल है। मैं तो आत्मा को जानते जानते, वह पुद्गल करता हो तो जानता हूँ, बस। वह भी निर्विकल्प ध्यान में आ नहीं पाते इसलिए उसको जानता हूँ, ऐसा व्यवहार से कहलाता है। दूसरा कुछ है

नहीं।

गुरुदेव ने महा मंत्र दिया है। जीव का ध्यान आकर्षित नहीं होता। ध्यान आकर्षित हो तो काम हो। कि जैसे सिद्ध परमात्मा जाननहार देखनहार हैं। जैसे सिद्ध परमात्मा जाननहार देखनहार हैं कि नहीं? ऐसे तू भी जाननहार और देखनहार है। अधूरे-पूरे का प्रश्न लेना नहीं। ज़रा भी सिद्ध से भिन्न पड़ा मतलब कर्तृत्व में गया। सारा संसार खड़ा हो जाएगा। आहाहा! महा मंत्र! इतना करने से धर्म होता है? और हम इतना इतना करते हैं और धर्म नहीं होता? कि ना। उसमें कर्म होता है। जानने में धर्म होता है और करने में कर्म होता है।

मुमुक्षु :- उसमें भाई! गुरुदेव ने कमाल किया क्योंकि वर्तमान में ही सिद्धत्व....

उत्तर :- नहीं, ऐसा कहते हैं कि केवलज्ञान द्वारा जैसे सिद्ध भगवान केवलज्ञान द्वारा जानते हैं, वैसे ही तू मति-श्रुतज्ञान द्वारा जानता है। किन्तु जानने में दोनों में समानता है। उसमें केवलज्ञान है इसलिए जानते हैं और (मुझे) मति-श्रुत है इसलिए जानता नहीं, ऐसा नहीं है। छोटा दीपक भी प्रकाशक है और बड़ा दीपक भी प्रकाशक है, ऐसा उनको कहना है। प्रकाशक की तुलना में समान है। है न? छोटा दीपक भी प्रकाशक है न? अन्धकार तो नहीं है। और सौ वॉट का बल्ब हो, तो भी प्रकाशक ही है। प्रकाश की अपेक्षा समानता है। ऐसा। अधूरे-पूरे का कोई प्रश्न मत करना। वें भी जाननहार और तू भी जाननहार। वें जाननहार हैं और मैं अधूरा हूँ इसलिए मैं थोड़ा जानूं और थोड़ा करूँ? करना तो आत्मा के स्वभाव में हैं ही नहीं। पचास-पचास प्रतिशत रखो ना? नहीं? सौ प्रतिशत जाननहार। अच्छा!

बहन बहुत ख़ुशी बताती हैं, अंतर से हों! हम तो चारों तरफ गए पर कहीं सूझ नहीं पड़ती थी। मार्ग नहीं मिलता था। आहाहा! मैं तो जाननहार हूँ, करनेवाला नहीं। ऐसी शांति अनुभव में आती है..! उनके स्वयं के शब्द हैं। हम चार-पांच जन गए थे। दोनों बहनें थी, और कौन? मीठाभाई थे, मैं था। आप थे? हमारे भाईसाहब! याद है न भाईसाहब! आत्मा है न? उसमें क्या है? शास्त्र की क्या जरुरत है? मूल बात पकड़ ली। जाननेवाला हूँ, करनेवाला नहीं। पंडित गोता खाते रहें और ये प्राप्त कर ले, ऐसा है यह। जाननहार हूँ, करनेवाला नहीं। ऊपर से देव आएं, तो भी फिरना नहीं (चलित होना नहीं)। जाननहार ही हूँ, करनेवाला नहीं। ये रसोई किसने की? तो कहे कि पुद्गल ने की। कह देना स्पष्ट। किसी का डर बर नहीं रखना। पुद्गल करता है रसोई, तो करता है।

मुमुक्षु :- स्वरुप ही ऐसा है न।

उत्तर :- ऐसा है। उसमें क्या? पुद्गल के परिणाम को तो पुद्गल करता है। जीव के परिणाम को जीव करता है। पुद्गल के परिणाम को तो पुद्गल करता है। रोटी, दाल, सब्जी, चावल जीव के परिणाम हैं या पुद्गल के? पुद्गल के। तो पुद्गल करता है या जीव करता है? पुद्गल करता है। और ढोकला बनाये वह कौन? शारदा बहन! श्रोता :- उसका व्याप्य-व्यापक उसीमें है। उत्तर :- उसमें है, तुम्हारे में नहीं, ऐसा। पुद्गल के साथ व्याप्य-व्यापक है कर्ता-कर्म का।

मुमुक्षु :- मैं उस रूप होऊं, तो मेरे से ढोकला हो।

उत्तर :- आप ढोकला रूप नहीं होते, इसलिए कर्ता नहीं?

मुमुक्षु :- नहीं, कर्ता नहीं। जाननेरूप हूँ।

उत्तर :- उसको करने जाओ, तो ढोकला हो जाना पड़े तो जीव का नाश हो जाए। इसलिए मुझे ढोकला करना नहीं है। ढोकला बनता है ऐसा जानता हूँ मगर करता नहीं। करूँ तो मैं ढोकला बन जाऊँ। मर्म है। उस मय हो तो करे न?

मुमुक्षु :- व्याप्य-व्यापक संबंध एक में ही होता है न!

उत्तर :- एक में ही होता है न! मैं ढोकला करूँ तो (मैं) ढोकला हो जाऊँ। मुझे ढोकला होना नहीं है। मुझे तो आत्मा रहना है। एकदम लॉजिक और न्याय से बात है। तन्मय नहीं होता।

मुमुक्षु :- करना नहीं पर ध्यान तो ठीक से रखना चाहिए न?

उत्तर :- लो! करना नहीं पर ध्यान तो रखना चाहिए न। वहां ध्यान रखना है कि यहाँ ध्यान रखना है? जाननहार को जानने में ध्यान रखना कि उसका ध्यान रखना? उसमें जाननहार को अर्पित कर देगा, तो आत्मा खो जाएगा। वास्तव में आत्मा ही जानने में आता है। और आत्मा को जानते जानते, यें सभी पर्यायें पुद्गल करता है, ऐसा सहज ही जानने में आता है। जानने की इच्छा नहीं है मगर जानने में आ जाता है, बस। टाइम हो गया! बोलो परम उपकारी श्री सद्गुरुदेव की जय हो!